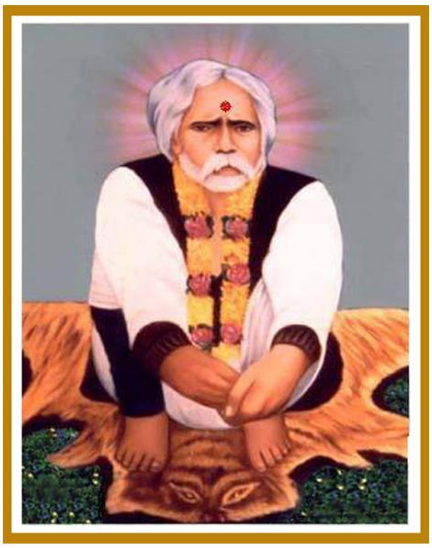

OM SHRI GURU PARAMATMANE NAMAH

MANOHAR JIVAN DARSHAN

SHRI SHRI 1008 SHRI MANOHAR DAS AGHORI

जनम (प्रगटीकरण) - Birth (Manifestation)
भाद्रपद शुक्ला - Bhadrapada Shukla
जलझुलनी एकादशी - Jaljulni Ekadashi
रात्रि ११ बजे पुष्य नक्षत्र में - 11 pm in the constellation Pushya
सम्वत् १९५२ (सन् 1894) - Samvat 1952 (AD 1894)

सत्यलोकवास (निर्वाण) - Satyalokwas (Nirvana)
अगहन सुदी ६ मंगलवार - Agahan Sudi 6 Tuesday
सुबह ५ बजे - 5 am
सम्वत् २०१५ (16 दिसम्बर 1958) - Samvat 2015 (16 December 1958)

WWW.AGHORI.IT

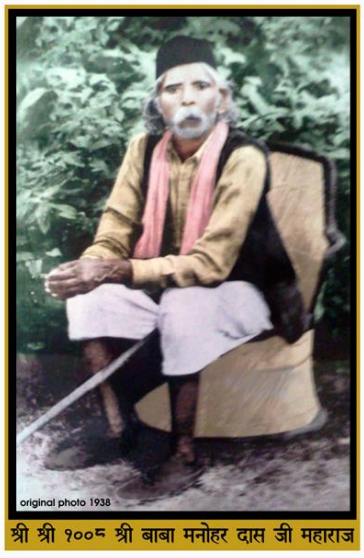

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज

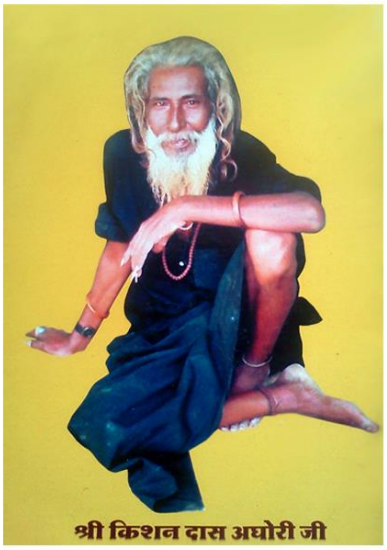
श्री किशन दास अघोरी जी

This book is the cleaning job done on photocopies of an original book,
now unobtainable, recovered by Radhika Dasi Aghori.
Some parts of the book were not legible necessitating a restoration.

In memory of Baba Manohar Das Ji, Baba Kishan Das Aghori guru's.

With love and devotion
Govinda Das Aghori

Questo libro è il lavoro di pulizia fatto su delle fotocopie di un libro originale,
ormai introvabile, recuperato da Radhika Dasi Aghori.
Alcune parti del libro non erano ben leggibili rendendo così necessario un restauro.

In ricordo di Baba Manohar Das Ji guru di Baba Kishan Das Aghori.

Con amore e devozione
Govinda Das Aghori

अध्याय-13

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

गीता अध्यायी संत

बाबा के जीवन वृत्त का विस्तार से अध्ययन करने के उपरांत यह ज्ञात होता है कि उनकी सबसे प्रिय पुस्तक थी ''श्रीभगवद्गीता''। उन्होंने गीता का बड़े मनायोग से स्वाध्याय किया था उनके समकालीन लोगों का कहना है कि बाबा महाराज को लगभग गीता के सभी अध्याय कंठस्थ थे। वे ध्यान में आने पर लगातार घंटों तक गीता के श्लोक बोला करते थे। वे अपने भक्तों को यह उपदेश भी दिया करते थे कि ''श्रीमदभगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम'' का सेवन करने के समान दुनियाँ में कोई भी श्रेय साधन नहीं है। ''जो ज्ञान श्रीमद्भगवद्गीता'' में है और जितना स्पष्ट है उतना दुनिया के किसी भी धर्मग्रंथ में नहीं है। कल्याण-कामी पुरुष को गीता का सेवन अवश्य ही करना चाहिए।

जग्दगुरु स्वामी शंकराचार्य के वचन हैं–

गेयं गीता नामसहस्त्रं, ध्येयं श्रीपति रुपमजस्त्रम।

नेयं सज्जन संगे चित्तं, देयं दीन जनाय च वित्तम॥

अर्थात्–गीता और विष्णु सहस्रनाम का नित्य पाठ करना चाहिए चित्त को संत जनों के संग में लगाना चाहिए। भगवान विष्णु के स्वरूप का निरंतर ध्यान करना चाहिए तथा दीन जनों की धन से सहायता करनी चाहिए।

बाबा ने अपने जीवन में गीता के ज्ञान को उतार लिया था वे हमेशा भगवान के ध्यान में मग्न रहा करते थे। कोई दीज-दुःखी उनकी शरण में आता उसकी वे मनोकामना की पूर्ति करते। वे चलते-फिरते वेदान्त थे उनके आचार-विचारों में गीता का रहस्य छुपा हुआ था। कहा जाता है कि वेदों का सार उपनिषद् है, उपनिषदों का सारमाग गीता है और गीता का भी सार भगवान ने समर्पण योग बतलाते हुए अर्जुन से कहा है कि–

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (गीता 18/66)

अर्थात– सम्पूर्ण धर्मों (कर्तव्य कर्मो) को मुझ में त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आजा। मैं तुझे सब पापों से

मुक्त कर दूंगा तू शोक मत कर। बाबा महाराज अक्सर कहा करते थे कि–"लाला! गीतास्य वेदन कौ सार है"। वास्तव में मुनिवर व्यास ने अठारह पुराण नव व्याकरण और चार वेदों का मन्थन करके महाभारत की रचना की थी।

महाभारत रूपी महासमुद्र का मन्थन करके गीता जैसा महान ग्रंथ प्रकट किया और गीता के मन्थन से प्राप्त सार (शरणागतयोग) जो गीता के अठारहवें अध्याय के छासठवें श्लोक के माध्यम से भगवान ने अर्जुन के कर्णपुटों में डालकर उसे कृतार्थ किया था।

जिस श्री मदभगवद्गीता को बाबा ने अपने जीवन और अपनी साधना का आधार बनाया था। वह कोई साधारण ग्रंथ नहीं वरन् सब धर्मों का सार बतलाने वाला एक महान ज्ञान का सागर है।

सर्ववेद मयी गीता, सर्वधर्ममयो मनुः।

सर्वतीर्थ मयी गंगा, सर्वदेवमयो हरिः॥

"गीता सम्पूर्ण वेदमयी है, मनुस्मृति सर्वधर्ममयी है, गंगाजी सर्व तीर्थमयी है तथा भगवान विष्णु सर्वदेव मयी है।" ऐसे महान ग्रंथ को गुरुदेव ने सम्यक प्रकार से स्वाध्याय करके उसके गूढ तात्पर्य को अपने जीवन का अपरिहार्य अंग बनाया था। उन्हें गीता के सातसौ श्लोक में से अधिकतर कंठस्थ कर लिए थे तथा उसके भाव को अपने आचार में ढाल लिया था। वे जो कुछ भी थे गीता का परिणाम था।

कहा जाता है कि जो मनुष्य गीता का एक श्लोक आधा श्लोक एक चरण अथवा आधा चरण भी प्रतिदिन धारण करता है, वह अन्त में मोक्ष प्राप्त कर लेता है–

पादस्याप्यर्धपादं वा श्लोकं श्लोकर्धमेव वा।

नित्यं धारयते यस्तु स मोक्षममधिगच्छति॥ (स्कन्द पु.)

अब आधे चरण (मामेंक शरणंब्रज) का इतना अधिक महात्म्य है तो जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ही गीता ज्ञान सागर में डुबकी लगाने में लगा दिया हो तो वह इसी जीवन में (जीवन्मुक्त) मुक्त क्यों नहीं होगा। ऐसे ही जीवनमुक्त महान आत्माओं में थे। हमारे श्री गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री बाबा मनोहरदासजी महाराज।

श्री मद्भगवद्गोता ज्ञान के प्रकाश में, उनके चरित्र को हम निरखें-परखें तो पाएंगे कि वह साक्षात गीता की प्रतिमूर्ति ही थे। जैसा कि गत अध्यायों में स्थान-स्थान पर हमने उनके चरित्र में गीतोक्त गुणों का होना सिद्ध किया है। इस अध्याय में पुनः गीता के आलोक में उनके उन सद्गुणों का विस्तार से वर्णन करते हैं, जो श्रीमद्भगवद् गीता में स्थान-स्थान पर वर्णित हैं।

गीता अध्याय दो, में भगवान श्रीकृष्ण ने परमात्मा में स्थित स्थिर बुद्धि वाले मनुष्यों का जैसा वर्णन किया है, वे सबके सब हमें बाबा के चरित्र में दिखाई देते हैं–

प्रजहाति चदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थिर प्रज्ञस्तदोच्यते॥ (गी. 02/55)

"श्री भगवान बोले–हे पृथा नन्दन! जिस काल में साधक मनोगत सम्पूंर्ण कामनाओं का अच्छी तरह त्याग कर देता है और अपने आप में ही सन्तुष्ट रहता है उस काल में वह स्थित प्रज्ञ कहा जाता हैं। इस श्लोक में कही गई मुख्य वात है कामना का सम्पूर्ण रूपेण त्याग तथा अपने आप में पूर्ण संतुष्ट रहना, ये दोनों वाते हुजूर के जीवन में सांगोपांग थी। अतः वे परमात्मा में स्थित स्थिर बुद्धि वाले नहान संत थे। दुःखों की प्राप्ति में उनके मन में कभी उद्वेग नहीं होता था और सुख की अवस्था में उनके मन में स्पहा नहीं होती थी। स्पृहा का तात्पर्य होता है कि यह परिस्थिति ऐसी ही बनी रहे यह सुख की अवस्था कभी बदले नहीं, मन में ऐसा भाव होना इसके साथ-साथ राग, भय एवं क्रोध से उनका अन्तःकरण सर्वदा मुक्त था और सदैव ईश्वर चिन्तन करने का उनका स्वभाव था। गीता अध्याय दो में वर्णित स्थिर बुद्धि पुरुष के अन्य लक्षण सब जगह आसक्ति रहित होना, शुभ तथा अशुभ को प्राप्त करके न तो हर्षित होना न द्वेष करना, इन्द्रियों को विषयों से इन्द्रियों को हटा लेना, ये सबके सब लक्षण बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज के चरित्र में मौजूद थे। अतः वे गीता ज्ञान के सागर थे। गीतोक्त ज्ञान को उन्होंने अंगीकार किया था, उसके अनुसार ही अपने जीवन को ढाल लिया था। उनकी इन्द्रियाँ और मन पूर्णतः उनके वश में थे क्योंकि गीता के अनुसार जिसकी इन्द्रियाँ इन्द्रियों के भोगो से दूर रहती हों वही पुरुष स्थिर बुद्धि वाला होता है (2/68) सम्पूर्ण मनुष्यों की जो रात (परमात्मा से विमुखता) है उसमें संयमी मनुष्य जागता है, और जिसमें साधारण मनुष्य जागते हैं अर्थात् भोग और संग्रह में लगे रहते हैं, वह तत्व वेत्ता मुनी की दृष्टि में रात है। (2/69) कहने का तात्पर्य है कि विषयों से विमुखता एवं परमात्मा से नित्ययोग की अवस्था सिद्ध भक्तों का प्रमुख गुण होता है। जैसे सम्पूर्ण नदियों का जल चारों ओर से समुन्द्र में आकर गिरता है पर समुद्र अपनी मर्यादा में अचल प्रतिष्ठित रहता है इसी प्रकार सम्पूर्ण भोग पदार्थ संयमी मनुष्य में विकार उत्पन्न नहीं कर सकते, वह परम् शान्ति में ही स्थित रहता हैं। बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके निर्मम, निरहंकार और निस्पृह होकर विचरते थे, उन्होंने परम् शान्ति को प्राप्त कर लिया था। गीता अध्याय दो में भगवान श्रीकृष्ण ने स्थिर बुद्धि प्रकरण में कहा कि–

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।

निर्ममो निरंहकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ (गी. 2/71)

जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग करके निर्मम, निरहंकार और निःस्पृह होकर विचरता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।

श्री मद्भगवद गीता अध्याय बारह में श्लोक संख्या 13 से 19 तक भगवान ने अपने सिद्धभक्तों के 39 लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया है–

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्ममो निरहंकारः सम दुःख सुंख क्षमी॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा छढ निश्चयः॥

मध्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मद् भक्तः स मे प्रिय॥ (गी. 12/13-19)

भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपने प्रिय सिद्ध भक्तों के दिव्य गुणों को स्पष्ट करते हुए कहा कि (1) सब भूतों में द्वेषभाव रहित होना, (2) स्वार्थ रहित सबका प्रेमी (3) करुणा का भाव रखने वाला (4) ममता से रहित (5) अहंकार शून्यता (6) दुःख सुख में समता वाला (7) क्षमावान् (8) निरंतर संन्तुष्ट (9) परमात्मा से नित्य निरंतर जुड़ा हुआ (10) मन बुद्धि-इन्द्रिया सहित शरीर को वस में रखने वाला (11) दृढ़ निश्चय वाला (12) मन और बुद्धि को मुझे अर्पित किये हुए मेरा भक्त मुझे प्रिय है। भगवान आगे के श्लोकों में अन्य गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं–

यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च में प्रियः॥

अनपेक्षः शुर्चिदक्ष उदासीनों गतव्ययः।

सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः स में प्रियः॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।

शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान्यः स में प्रियः॥ (गी. 12/15-17)

(13) जिससे कोई प्राणी उद्विग्न नहीं होता (14) जो स्वयं किसी प्राणी से उद्विग्न नहीं हो (15)-(18) हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग से सहित (19) आकांक्षा से रहित (20) बाहर-भीतर से पवित्र (21) दक्ष अर्थात् जिसने मानव जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया हो (22) पक्षपात से रहित (23) व्यथा से छूटा हुआ (24) सर्वारम्भ परित्यागी अर्थात् मन, वाणी, शरीर द्वारा प्रारब्धवश होने वाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्यागी (25) जो कभी हर्षित नहीं हो (26) किसी से द्वेष नहीं करता हो (27) कभी शोक नहीं करता हो (28) न किसी प्रकार की कामना करता हो (29) शुभ और अशुभ कर्मों का त्यागी, मेरा प्रिय भक्त होता है और वह मुझे अत्यंत प्रिय लगता है। अपने सिद्धभक्तों के शेष गुणों को

अगले श्लोकों में वर्षन करते हुए भगवान कहते हैं कि -

श्लोक– *समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।*

शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः संगविवर्जितः॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।

अनिकेतः स्थिर मतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥ (गी. 12/18-19)

इन दो श्लोकों में भगवान ने अपने सिद्धभक्तों के सदा सर्वदा समभाव में स्थिर रहने का वर्णन किया है (30) जो शत्रु और मित्र में समान भाव वाला हो (31) मान तथा अपमान में सम (32) सर्दी गर्मी अर्थात् अनुकूल प्रतिकूल विषयों में तथा सुख-दुःख में अर्थात् सुखदायक एवं दुःखदायक परिस्थितियों में जो सम रहता हो (33) आसक्ति से रहित है (32) निन्दा और स्तुति को समान समझने वाला (35) मननशील स्वभाव वाला अर्थात सिद्धभक्त के द्वारा स्वतः स्वाभाविक भगवत स्वरूप का मनन होता रहता है इसलिए उसे "मौनी" अर्थात मननशील कहा है (36) जिस किसी प्रकार से शरीर का निर्वाह होने से सन्तुष्ट अर्थात प्रारब्धानुसार शरीर निर्वाह के लिए जो मिल जाये उसी में पूर्ण संतुष्ट रहने वाला (37) रहने के स्थान में तथा शरीर में भी ममता-आशक्ति न रखने वाला (38) स्थिरमति अर्थात जिसकी स्थिर बुद्धि हो गई हो (39) भक्ति मान पुरुष मुझे प्रिय है।

गीता के बारहवें अध्याय के 13 से 19 श्लोक तक कुल सात श्लोकों में अपने प्रिय सिद्धभक्तों के उपर्युक्त 39 लक्षणों का वर्णन किया है, उनमें प्रमुख बात और महत्त्वपूर्ण तत्व भक्तों में पाये जाने वाले राग द्वेष, हर्षशोक आदि विकारों का अत्यन्ताभाव एवं समता की स्थिति और समस्त प्राणियों के हित की भावना ये समस्त दैवी गुण हमारे बाबा श्री मनोहरदास में विद्यमान थे। उनका चरित्र दैवी गुणों का भण्डार था उन्होंने गीतोक्त सद्गुणों को पूर्ण रूपेण अपने जीवन का अंग बना लिया था।

ज्ञान की कसौटी

श्री मद्भगवद् गीता अध्याय 13 में श्लोक 7 से लगायात 11 तक पाँच श्लोकों में तत्ववेत्ता ज्ञानी में पाये जाने वाले बीस लक्षणों का उल्लेख करके भगवान ने कहा है कि जिस महापुरुष में ये लक्षण हों वह परम ज्ञानी एवं तत्ववेत्ता है और इनके विपरीत लक्षण हो तो उसे परम अज्ञानी एवं मूर्ख समझना चाहिये। यहाँ पर हम उन पाँच श्लोकों पर विचार करते हैं जो ज्ञान की कसौटी कहे जा सकते हैं।

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्ति रार्जवम्।

आचार्योपासनं शौच स्थैर्यमात्म विनिग्रह॥

ज्ञानी पुरुष में जो गुण पाये जाते हैं उनमें सबसे पहले भगवान ने अमानित्वम् अर्थात अपने में मानीपन का अभाव (मान रहित होना) बतलाया है। मनुष्य वर्ण आश्रय योग्यता, विद्या, गुण पद आदि को लेकर अपने में श्रेष्ठता का भाव आरोपित कर अपने को आदरणीय मान लेता है। मूल रूप से यह भाव उत्पत्ति विनाशशील शरीर के साथ तादात्म्य होने से ही उत्पन्न होता है। ज्ञानी पुरुष में मान का सर्वथा अभाव होता है। हाँ वह आप अमानी रह कर दूसरे को मान देने वाला होता है राम चरित मानस में तुलसीदास जी महाराज ने संतों के गुणों में "सबहिं मान-प्रद आप अमानी'. .....। होना वर्णित किया है। उपर्युक्त श्लोक (13.-17) में अन्य लक्षण हैं– दम्भ हीनता अर्थात दिखावटीपन का अभाव, अहिंसा अर्थात् मन वाणी तथा शरीर से किसी को कष्ट न देना, क्षमाशील, सरलता, गुरु की सेवा, शौचम अर्थात् बाहर-भीतर की शुद्धि, स्थिरता और मन का वश में होना

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।

जन्म मृत्युजरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्॥ (गी. 13/8)

अर्थात्–इस लोक और परलोक के सम्पूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव, अहंकार शून्यता, तथा जन्म-मृत्यु वृद्धावस्था और रोग आदि में दुःख दोषों का बारम्बार विचार करना

असक्तिरनभिष्वसंग पुत्रदार गृहादिषु।

नित्यं च समचिन्तत्वमिष्टानिष्टों पपन्तिषु॥ (गी. 13-9)

पुत्र, स्त्री, घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना अर्थात मन के अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थिति के आवे में हर्ष शोकादि विकारों का उत्पन्न न होना।

मयि चानन्य योगेन भक्तिरव्यभि चारिणी॥
विविक्त देशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि॥

मेरे में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति का होना एकान्त स्थान में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना।

अध्यात्मज्ञान नित्यत्वं तत्व ज्ञानार्थ दर्शनम।

एतत् ज्ञानम् इति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा॥ (गी. 13-11)

अध्यात्मज्ञान में नित्य निरंतर रहना, तत्वज्ञान के अर्थ रूप परमात्मा को सब जगह देखना इस उपर्युक्त प्रकरण में हमने देखा कि अपने प्यारे भक्त एवं सखा अर्जुन को भगवान अपने मुखारविन्द से ज्ञानियों के लक्षणों को सुना रहे हैं इन

पाँच श्लोकों में उन्होंने अमानित्वम् से लेकर 'तत्व ज्ञानार्थ दर्शनम्' तक जो बीस साधन वतलाये हैं वे सब देहाभिभान मिटाने वाले तथा परमात्मा की प्राप्ति में साहयक होने से ''ज्ञान'' नाम से कह गये हैं इन साधनों के विपरीत मानित्व, दम्भित्व और हिंसा आदि जितने भी दोष हैं वे सब देहाभिमान बढाने वाले होने के कारण परमात्मा से विमुख करने वाले होते हैं। अतः भगवान ने उन्हें ''अज्ञान'' कहा है। उपर्युक्त प्रकरण के प्रकाश में हम अपने बाबा मनोहर दास जी के जीवन को निरखें परखें तो पाते हैं कि ये सम्पूर्ण गुण उनके चरित्र में पूर्ण रूपेण मौजूद थे, आगे संस्मरण खण्ड में हमने एक संस्मरण में वर्णन किया है कि पुरबनीवाली बगीची पर रहने वाला महात्मा भगवान गिरि अब बाबा की तपोस्थली धूना पर आता था तो बाबा उसका बड़ा आदर सत्कार करते थे। अपना आसन उसे बैठने को देते थे। उस महात्मा के मन में ऐसा अहंकार आ गया कि मैं तप और साधना में इनसे बड़ा हूँ। वह बाबा का विशेष सम्मान नहीं करता था। लेकिन एक दिन की घटना ने उसकी आँखें खोल दी और वह बाबा के प्रभाव को जान कर उनका आदर करने लगा। सब कुछ कहने का मेरा मन्तव्य यह है कि हुजूर के जीवन पर गीता ज्ञान का पूर्ण प्रभाव था उन्होंने गीता का अध्ययन ही नहीं किया वरन् उसका मनन और तवानुसार आचरण भी किया। गीता के अध्ययन से वे त्रिगुणातीत हो गये उन्होंने जड़ता से अपने माने हुए सम्बन्ध को तोड़कर जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करली थी। उपर्युक्त ज्ञान के प्रकरण में भगवान ने जिन गुणों का उल्लेख किया है जैसे मानरहित होना अपने में पूज्य भाव या अपने को पुजवाने का भाव नहीं होना, दिखावटीपन का अभाव, अहिंसा, क्षमा, विषयों से वैराग्य अनुकूल प्रतिकूल परिस्थितियों में समतायुक्त रहना तथा विषयों पुरुषों में प्रीति भाव नहीं होना एकान्त में रहने का स्वभाव तथा ईश्वर को सब जगह अनुभव करना आदि गुण हमारे गुरुदेव में विद्यमान थे।

गुणातीत पुरुष के लक्षण

गीता अध्याय 14 के श्लोक संख्या 20 में भगवान ने अर्जुन को वताया कि जो पुरुष तीनों गुणों का अतिक्रमण कर लेता है वह जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा समस्त दुःखों से रहित होकर अमरता का अनुभव कर लेता है। गुणातीत की ऐसी महिमा को सुनकर अर्जुन के मन में गुणातीत पुरुष के लक्षणों को जानने की जिज्ञासा हुई उसने श्लोक संख्या 21 में प्रश्न किया कि प्रभो–इन तीनों गुणों से अतीत हुआ पुरुष किन-किन लक्षणों से युक्त होता है? उसके आचरण कैसे होते हैं? अर्जुन के प्रश्नों के उत्तर में भगवान सबसे पहले गुणातीत पुरुष के लक्षणों को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि–

प्रकाशं च प्रवृति च मोह मेव च पाण्डव।

न द्वेष्टि सम्प्रवृन्तानि न निवृतानि कांक्षति॥ (गी. 14/22)

भगवान **बोले**–हे पाण्डव! प्रकाश प्रवृति तथा मोह ये सभी अच्छी तरह से प्रवृत्त हो जायं तो भी गुणातीत मनुष्य इनसे द्वेष नहीं करता और ये सभी निवृत्त हो जाये तो वह इनकी इच्छा नहीं करता। कहने का तात्पर्य है कि सत्वगुण का कार्य प्रकाश है। इन्द्रियों और अन्तःकरण की स्वच्छता और निर्मलता का नाम ही यहाँ प्रकाश हैं, जिससे इन्द्रियों द्वारा शब्दादि पाँचों विषयों का स्पष्टतया ज्ञान होता है उसे यहाँ भगवान प्रकाश कह रहे हैं, रजोगुण का कार्य प्रवृत्ति हैं, इसमें लोभ प्रवृत्ति, राग पूर्वक कर्मों का आरम्भ अशान्ति और स्पृहा आदि वृतियाँ पैदा होती हैं। रजोगुण के दो रूप कहे गये हैं–राग और क्रिया इनमें राग तो दुःखों का कारण है। यह राग गुणातीत पुरुष में नहीं रहता परन्तु जब तक शरीर है, तब तक उसमें निष्काम भावपूर्वक स्वतः किया होती रहती हैं, इसी क्रियाशीलता को भगवान ने इस श्लोक में प्रवृत्ति कहा है।

तीसरी मुख्य बात है तमोगुण का कार्य रूप मोह यह प्रमुखः दा प्रकार का कहा गया है (1) नित्य-अनित्य, सत्-असत् कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक न होना (2) व्यवहार में भूल होना। गुणातीत महापुरुषों में पहले प्रकार का मोह तो होता ही नहीं (गी. 4/35) परन्तु व्यवहार में भूल होना अर्थात रस्सी में साँप, मृग तृष्णा का जल, सीपी और अभ्रक में चाँदी का भ्रम होना आदि मोह गुणातीत मनुष्यों में भी हो सकता है, इसी पर विशेष जोर देते हुये यहाँ भगवान कहते हैं कि प्रकाश, प्रवृत्ति एवं मोह इन तीनों के अच्छी तरह प्रवृत डोने पर गुणातीत पुरुष द्वेष नहीं करता और इनके निवृत होने पर इनकी कामना नहीं करता। गुणातीत के लक्षणों को आगे कहते हैं–

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।

गुणावर्तन्ते इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते॥ (गी. 14/23)

जो उदासीन की तरह स्थित है और जो गुणों द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता तथा गुण ही गुणों में बरत रहे है, इस भाव से जो अपने स्वरूप में स्थित रहता है, स्वयं कोई भी चेष्टा नहीं करता–वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है।

आगे के श्लोकों में भगवान गुणातीत मनुष्या के आचरणों पर प्रकाश डालते हैं–

सम दुःख स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियों धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
माजा पमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः॥
सर्वारम्भपरित्यगी गुणातीतः स उच्यतेः॥ (गी. 14/24-25)

जो धीर मनुष्य सुख-दुःख में समान रहता है स्वस्थः अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित रहता है जो मिट्टी के ढेले, पत्थर एवं स्वर्ण को एक समान समझता हो

जो प्रिय अप्रिय तथा अपनी निन्दा स्तुति में सम हो.जो मान अपमान तथा शत्रु मित्र में समान भाव वाला हो जो सम्पूर्ण कर्मों के आरम्भ का त्यागी हो ऐसा मनुष्य गुणातीत कहा जाता है।

उपर्युक्त प्रकरण को लिखने का मेरा तात्पर्य यह है कि महात्मा मनोहर दास जी महाराज त्रिगुणातीत थे और उनको इस अवस्था में पहुँचाने वाली श्री मद्भगवद् गीता ही है–जिससे वे अपने साधना काल में प्रमुख अध्येता रहे। गीता के अध्ययन के फलस्वरूप उनमें समस्त देवी गुणों का विकास हो गया था, जिन्होंने उन्हें ब्रह्म प्राप्ति का पात्र बना दिया था। भगवान ने दैवी सम्पदा को मुक्ति दायिका और आसुरी सम्पदा को बन्धनकारिणी तथा अधोगति का मूल कहा है। मुक्तिदायिका दैवी सम्पदा के वारे में भगवान का मत देख लेने का भी शुभ अवसर न छोड़ते हुये हम यहाँ उसका उल्लेख करना भी समयानुकूल समझते हैं–

गीतोक्त देवी सम्पदा

अध्याय 16 में प्रथम श्लोक से लगायत श्लोक संख्या 3 तक भगवान ने इन दिव्य गुणों का जो मोक्षदायक हैं तथा जिनमें इनका अभाव होता है वह असुर माना गया है तथा अद्योगति का पात्र माना गया है। अतः भगवान कल्याणकारी देवी गुणों का सरल एवं संक्षिप्त शैली में वर्णन करते हैं अपने भक्त एवं सखा अर्जुन एवं विश्व कल्याणार्थ इन गुणों का भगवान ने वर्णन इस प्रकार किया है–

अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिर पैंशुनम।

दया भूतेप्व लोलुप्त्व मार्दवं ह्रिचापलम्॥

तेजः क्षमा धृतिः शौचम्द्रोहो नातिमानिता।

भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत॥ (गी. 16/1-3)

भगवान ने कहा कि–सर्वथा भय का अभाव, अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञान के लिये योग में दृढ़ स्थिति, सत्विकदमान, इन्द्रियों का दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, कर्तव्य पालन के लिए कष्ट सहना, शरीर-मन वाणी की सरलता, अहिंसा, सत्यभाषण, क्रोध न करना, संसार की कामना का त्याग, अन्तःकरण में राग द्वेष जनित हलचल का न होना चुगली न करना, प्राणियों पर दया करना, सांसारिक विषयों में न ललचाना, अन्तःकरण की कोमलता, लोक और शास्त्र के विरुद्ध आचरण में लज्जा, चपलता का अभाव।

तेज, क्षमा, धैर्य, शरीर की बाहर भीतर की शुद्धि, वैर भाव से रहित मान को न चाहना, ये सभी दैवी सम्पदा को प्राप्त मनुष्य के लक्षण हैं। उपर्युक्त तीनों श्लोकों में जो बात कहीं है भगवान ने उन्हें कई वार अन्य अध्यायों में प्रकारान्तर से कहा है। जिस बात को उन्होंने कई वार दोहराया है कहीं स्थित प्रज्ञ के लक्षणों के रूप में तथा कहीं अपने सिद्ध भक्तों के लक्षणों के रूप में तो कहीं दैवी सम्पदा के रूप में ये बातें हमारे जीवन को उन्नत करने तया सदा-सदा को बन्धन से मुक्ति दिलाने वाली है। अपने जीवन को गीतोक्त मार्ग पर ढालने वाले बाबा मनोहर दास ने उपर्युक्त सदगुणों को अपने जीवन में स्थान दिया तथा जीवन्मुक्त हो गये। उनके दिव्य चरित्र से शिक्षा ग्रहण करके उनके बताये मार्ग पर चलकर हमें भी अपना कल्याण कर लेना चाहिए।

हमने पूर्व अध्यायों में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि हुजूर के अध्यात्मिक विचारों पर श्रीमद्भगवद गीता का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है उसी को इस अध्याय में उदाहरण सहित स्पष्ट किया है। गीता जैसा गूढ गम्भीर ग्रंथ जो उपनिषदों का सार कहा गया है प्रमुखतः साधन की करण निरपेंक्ष शैली को प्रधानता देता है तथा उसी करण निरपेक्ष शैली को बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज ने अपनी साधना का आधार बनाते हुए सिद्धावस्था प्राप्त की थी। अतः गीता की करण निरपेक्ष शैली की कुछ चर्चा करें।

परमात्म तत्व की प्राप्ति हेतु साधन शैलियाँ

परमात्मा की प्राप्ति हेतु साधन की प्रायः दो शैलियों का वर्णन वेद शास्त्रों और अन्य धर्म ग्रन्थों में पाया जाता है। पहली करण-सापेक्ष शैली और दूसरी करण निरपेंक्ष शैली जिसे शैली में अन्तःकरण अर्थात मन बुद्धि चित्त आदि जड़ साधनों की सहायता से साधना की जाती है उसे करण सापेक्ष शैली तथा जिसमें "स्वयं" की प्रधानता रह जाती है अर्थात् जिसमें जड़ता का त्याग किया जाता है और साधना का प्रमुख आधार स्वयं चेतन आत्मा होता है उसे करण निरपेक्ष शैली कहा जाता है। इन दोनों ही साधन शैलियों से परमात्म तत्व की प्राप्ति करण निरपेक्षता से अर्थात् जड़ता का त्याग करने से ही होती है। करण सापेक्ष साधन से भगवत प्राप्ति में देर लगती है, जब कि करण निरपेक्ष शैली का साधक जल्दी सिद्धि प्राप्त करता है।

योगी की सिद्ध के लिए गीता में करण निरपेक्ष शैली को महत्त्व दिया गया है जब कि पातंजति योग दर्शन में योग की सिद्धि के लिए करण सापेक्ष शैली को आधार बनाया है। परमात्मा में मन लग गया तो ठीक है पर मन नहीं लगा तो कुछ नहीं। मन जड़ है परमात्मा चेतंन स्वरूप है, चेतन तत्व की प्राप्ति जड़ता के सहयोग से सम्भव नहीं। उसके लिए चेतन जीव को स्वयं ही परमात्मा से जुड़ना होगा। करण-निरपेक्ष शैली में किसी अभ्यास की आवश्यकता नहीं। क्यों कि सारे अभ्यास जड़ साधनों के द्वारा होते हैं। करण निरपेक्ष शैली में मन बुद्धि से साजन्ध

विच्छेदपूर्वक परमात्मा के साथ स्वयं का सम्बन्ध है। करण निरपेक्ष शैली में अभ्यास की आवश्यकता नहीं है। कारण कि स्वयं का परमात्मा के साथ स्वतः सिद्ध नित्य सम्बन्ध अर्थात् नित्य योग है ही। करण सापेक्ष शैली में अपने लिए साधन करने अर्थात् भाव को प्रधानता कही गई है।

बाबा श्री मनोहर दास जी महाराज की साधन पद्धति-करण निरपेक्ष थी। बाहारी तीर्थ, व्रत, भजन, ध्यान, कथा, कीर्तन तथा माला तिलक आदि बाह्य वेश का उन की साधना में कोई स्थान न था, क्योंकि ये सब काम जड़ता का सहारा लेकर ही सम्पन्न होते हैं।

साधन की जो पद्धति बाबा ने अपनाई थी वह सभी जीवों को चाहे वे किसी देश वेश या सम्प्रदाय के क्यों न हो उपयोगी एवं कल्याणकारी है। इसमें किसी विशेष योग्यता या परिस्थिति की आवश्यकता नहीं। केवल अपने अन्दर भगवत् प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा होनी चाहिये। उत्कृष्ट अभिलाषा से तत्काल जड़ता से सम्बन्ध विच्छेद होकर नित्य प्राप्त परमात्मा तत्व का अनुभव हो जाता है। कमरे में चाहे कितने ही वर्षों का अन्धेरा हो एक माचिस को जलाते ही वह नष्ट हो जाता है ठीक इसी प्रकार जडता के साथ कितना ही पुराना सम्बन्ध हो उत्कट अभिलाषा होते ही वह मिट जाता है। उत्कृष्ट अभिलाषा करण-सपेक्षता से होने वाली समाधि से भी ऊँची चीज है। उँचो से उँची निर्विकल्प समाधि का भी आरम्भ और अन्त होता है। जब तक आरम्भ और अन्त है तब तक जड़ता से सम्बन्ध है। जड़ता से सम्बन्ध हटते ही मनुष्य को तत्काल भगवान से नित्य योग का अनुभव हो जाता है। जिस परमात्मा से जीव का नित्य योग है उसकी उसे विस्मृति हो रही है। सिर्फ उधर दृष्टि डालने की आवश्यकता है, लेकिन सांसारिक सुख की कामना आशा और भोग के कारण जीव की उधर दृष्टि जाती ही नहीं। जब तक सांसारिक भोगों और उनके संग्रह में जीव लगा हुआ है तब तक उसे अपने सहज स्वरूप की प्राप्ति सम्भव नहीं। नाशवान् पदार्थों की जो प्रियता भीतर बैठी हुई है, वह प्रियता भगवान के स्वतः सिद्ध सम्बन्ध को समझने नहीं देती। हुजूर ने अपने तन-मन तथा बाहरी संसार की सब प्रकार की जड़ता का त्याग कर स्वयं को उस पर तत्व में (लीन होकर उस परम तत्व में) जोड़ दिया था तथा उस परम तत्व में लीन होकर पर शान्ति का अनुभव अपने जीवन काल में ही कर लिया था। यह सब श्रीमदभगवद गीता के स्वाध्याय का ही महान प्रभाव था।

॥ हरिः ॐ तत्सत्॥

अध्याय-14

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

दार्शनिक विचार एवं आध्यात्मिकता

हुजूर को रहनी सहनी और उनकी वाणियों के आधार पर हम उनके दार्शनिक विचारों को समझ सकते हैं। वे ईश्वर को निर्गुण निराकार तथा घट-घट का वासी मानते थे। उनका लौकिक ज्ञान भी बहुत विस्तृत था। वे पाखण्डों अन्धविश्वासों और रूढियों से मुक्त थे। उनकी दृष्टि में ईश्वर का निवास ऊँच-नीच अच्छे-बुरे सभी व्यक्तियों के हृदय में है। उनके विचारों में एक अनौखा रहस्यवाद, दार्शनिक चिन्तन एवं आध्यात्मिकता दिखाई देती थी। उन्होंने जीव और ब्रह्म के बीच मोह (माया) को व्यवधान बताया। उन्होंने पूर्ण रूपेण अनासक्त रहकर परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त किया वे गुरु कृपा को सर्वोपरि मानते थे। यहाँ तक कि वे ईश्वर को गुरुदेव के रूप में मानकर उनकी अखण्ड ध्यान वृति से उपासना करते थे। वे मानते थे कि निर्गुण निराकार ईश्वर का प्रथम प्रकटीकरण गुरुदेव के रूप में साकार होता है। गुरु कृपा से ही जीव 'शिव' हो जाता है गुरु कृपा से ही उस 'अलख' परमतत्व का बोध होता है। उनकी प्रार्थना में सर्व प्रथम "निरंजन" (मायारहित अविकारी ब्रह्म) का नमस्कार किया गया है–

"निरंजन को नमस्कार है,

नमो गुरुदेवजी को,

गनपति और फनपति,

सरस्वती जी को प्रनाम् है।"

इस प्रकार निर्गुण निराकार ईश्वर जो संसार में जड़ चेतन सभी में समान रूप से व्याप्त है जब सगुण साकार रूप लेता है तो गुरुदेव के रूप में जीवों का उद्धार करने का अवसर लेते हैं–

बन्दउ गुरुपद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि"

महा मोह तम पुंज, जासुवचन रविकर निकर॥

उनका यह विचार था कि अज्ञान (अविद्या) के कारण ही जीव अपने "शिव-रूप को भूला हुआ है जब गुरु कृपा से इसके अज्ञान का निवारण हो जाता है तो यह जीव ही अपने सहज स्वरूप जो "चेतन अमल सहज सुख रासी" है, का अनुभव कर लेता है।

बाबा महाराज निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा से विशेष प्रभावित लगते हैं। वे अक्सर कबीर, नानक आदि भक्ति कवियों के पदों का गुनगुनाया करते थे। उनके विचार से आत्मा एवं परमात्मा न्यारे-न्यारे न होकर एक ही हैं। यह संसार मिथ्या एवं स्वप्नवत् है, जब तक अज्ञान है तभी तक यह सत्य सा लगाता है। गुरुकृपा से ज्ञानोदय होने पर इस संसार की असारता का भान हो जाता है और उसे परमतत्व का बोध हो जाता है। हुजूर साधना को ईश्वर प्राप्ति के हेतु बहुत ही आवश्यक मानते थे उनका मत था कि मानव देह बन्धन और मोक्ष का एक मात्र साधना (स्थान) है, विषय भोगों से आसक्ति हटाकर मन तथा इन्द्रियों को वस में करके जब साधक साधना करता है तो उसकी आत्मा से मल, विक्षेप एवं आवरण दोष दूर होकर वास्तविव तत्व का बोध हो जाता है। लेकिन ज्ञान साधना का पथ अत्यन्त अगम और कठिन है। जब तक द्वैत है तब तक ज्ञान नहीं। जब जीवात्मा द्वैतभाव समाप्त करके आगे साधनारत है तो उसे ज्ञान प्राप्त होता है। जब मन का भ्रम (अज्ञान) दूर होता है तो उसे परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

बाबा मनोहरदास जी महाराज का चिन्तन अद्वैत वेदान्त दर्शन से पूर्ण रूपेण प्रभावित जान पड़ता है। उनके स्वाध्याय ग्रन्थों में श्री मद्भगवद्गीता'' एवं उपनिषदों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्हें गीता के सैकड़ों श्लोक कंठस्थ थे। एकेश्वरवाद के अनुसार वे ब्रह्म, अल्लाह राम, रहीम आदि अनेक रूपों में एक ही सत्ता को स्वीकार करते थे तथा जीवात्मा एवं परमात्मा की सहज एकता को मानते थे–''तू खुद ही खुदा है''। माया एवं अज्ञान के कारण हमारी एकता में विघ्न आकर अनेकता का भाव आता है। जीवात्मा अपने को ईश्वर से भिन्न मानकर सुखी दुःखी होता रहता है। उनके मतानुसार न सुख है न दुःख न स्वर्ग है न नर्क यह सब अज्ञान से कल्पित है। वे ''अलख पुरुष'' के उपासक थे। उनके अनुसार घट-घट वासी परामात्मा का स्वरूप आश्रित पदार्थ के अनुसार भले ही मान लिया जाए लेकिन यह धारणा लौकिक है ईश्वरीय स्वरूप तो अलौकिक तथा अतीव सूक्ष्म है।

गुरुदेव बाबा साहव की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अनुभूतियाँ बड़ी ही रहस्य से भी भरी हुई थीं। उनके विचार इतने परस्पर विरोधी से जान पड़ते थे कि उनकी दार्शनिक विचार धारा का स्पष्ट निरूपण करना मुझ जैसे अल्पज्ञ के वस की बात कहाँ? कभी-कभी सूफियों जैसी विरह की पीर से ईश्वरीय प्रेम की बातें करते, कभी अद्वैत वेदान्त की एकता में मस्त हो जाते, कहीं-कहीं उनकी वाणियों से उनका साधनात्मक रहस्यवादी रूप प्रकट होता। प्रमुख रूप से निर्गुण ज्ञानाश्रयी भक्ति धरा से प्रभावित उन्होंने निराकार ईश्वर की भक्ति को अपनाया था। वे कहा कहा करते कि–''साधना के लिए मनुष्य के लिए अपने मन एवं आचरण को पवित्र करना होगा। माया मोह एवं अहंकार के कारण जीवात्मा भक्ति के सूक्ष्मत्त्व को नहीं जान पाता। बाहरी आडम्बरों और पाडित्याभिमानी लोगों को ईश्वर का दर्शन नहीं हो सकता। उन्होंने सतसंग को भी ईश्वर की आराधना में बड़ी सहायक बतलाया है।

संतों की (तत्ववेत्ताओं) की संगत से प्राणी सहज ही आत्मतत्व का सम्मलेता है, संतों के अन्दर निम्नलिखित गुणों को आवश्यक बतलाया–

दोहा– *दया गरीबी बन्दगी, समता शील स्वभाव।*

ऐसे लक्षण साधु के, कहै कबीर विचार॥

इस दोहे को बोलकर वे कहा करते कि अब तक हमारे हृदय में, दयाभाव, दीनभाव (नम्रता) तथा नित्य नियम से ईशअराधना (नाम जप) का अभ्यास तथा सभी प्राणियों में समान भाव (समता के साथ शील स्वभाव (अहंकार शून्यता) नहीं होगी तव तक हम साधक कोटि में नहीं आ सकते। उन्होंने सच्चे संतों के संसर्ग को मोक्ष का द्वारा वतलाया और दुर्गुण दुराचारियों की संगत को नर्क का मार्ग बतलाया–

''संतसंग अपवर्ग का, कामीभव कर पंथ''

कि संतों की संगत मोक्षदायिका है और कामी, विषयी लोगों की संगत वन्धन और पतन की करने वाली है साधकों के उपदेश हेतु वे एक पद वोला करते थे–

दीनताई दया और नम्रताई दुनिया बीच,

बन्दगी से प्यार राख भूखे को खिलाएगा।

चार बीसी चार से, बचेगा तू मेरे यार,

साधुअन की संग से तू बड़ा सुख पाएगा।

वेद अरु पुरान सब, कहते हैं जमान भऐ,

संकट हूँ न आवै जमत्राशहुँ न पावेगा॥

उद्धव जी विचार देखो, औसर न बारबार।

बड़ी सरकार का सलूक काम आवेगा॥

इस वद में साधकों के लिए एक आचार संहिता है और सतसंग की महिमा का बखान किया गया है साधुओं और परमार्थ के खोजियों को चाहिये कि अपने अन्दर दैवी गुणों का विकास करे इस संसार को ईश्वर का ही प्रति रूप मानते हुए जीव मात्र की सेवा में लगे रहे। अपने हृदय में दीनता एवं दया का भाव साथ ही अहंकार को त्याग कर नम्रता का गुण धारण करे। बन्दगी से प्यार'' अर्थात् भगवान के भजन को अधिक से अधिक समय तक, हर क्षण ईश्वर की याद में बिताना ही बन्दगी से प्यार रखना है। जो हर क्षण सोते जागते एवं अन्य संसारी व्यवहार के समय भगवान के नाम का जप करता है, उसे तत्काल सिद्धि प्राप्त होती है। बाबा महाराज भूखे को भोजन कराने के समान संसार में कोई पूण्य नहीं मानते थे। भूखे को खिलाएगा पद पे यह स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि अन्नदान को वे बहुत

महत्त्व दिया करते थे। स्वयं भी अपने लिए आया भोजन दूसरे भूखे टूटे को खिला दिया करते थे। जो भी भेंट रूप सामग्री फल, मिठाई या अन्य वस्तु आया करती, उसे आप दूसरा को ही बाँट दिया करते थे।

इस प्रकार भगवान की बन्दगी एवं भूखे प्यासे प्राणियों की सेवा का फल ''चार बीसी चार से बचेगा तू मेरे यार अर्थात् कर्मानुसार प्रारब्ध भोग के निमित्य मिलने वाली 84 लाख योनियों से मुक्त होना बतलाते थे चार बीसी चार अर्थात् 20×4 = 80 और + 4 = 84 के फन्दे से बचना। जन्म मरण से मुक्त होकर बन्धन से मुक्त हो जाना बतलाते थे। साधु संगत परम कल्याणकारी होती है इस पद में यह बात स्पष्ट रूप से बतलाई गई है कि साधुओं और संतों की संगत से मनुष्य अनेक संकटों से मुक्त हो जाता है और उसका आवागमन जन्म मरण का चक्र समाप्त हो जाता है, उसे यम का भय नहीं रहता है। इस बात को वेद और पुराण भी साक्षी के रूप में कहते हैं। मानव देह बार-बार नहीं ''मिलती औसर न वार वार'' कह कर इसी को बतलाया गया है। मनुष्य को इस बात को समझ लेना चाहिए–

कबहुँक करि करुना नर देही।

देत ईस बिनु हेत सनेही॥

नर तन भव वारिधि कहुँ बेरो।

सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥

भगवान जीवन पर परम कृपा करके इसे मानव देह देते हैं उस देह को पाकर सद्गुरु के उपेदेशानुसार वह साधना करता है अपने अन्दर दिव्य गुणों का संचार करके शुद्ध सत्वमई होकर दया, करुणा, अहिंसा, परोपकार जैसे दिव्य गुणों को धारण कर भगदान के नाम का जप करता हुआ भगवान का ही रूप हो जाता है कहने का तात्पर्य यह है कि मानव देह ही मुक्ति का साधन है, इसके समान और कोई देह नहीं–

नर तन सम नहिं कवनिउ देही।

जीव चराचर जाचत तेही॥

नरक स्वर्ग अपवर्ग जिसेनी।

ज्ञान विराग भगति सुध देनी॥

इसलिए मानव देह जो बहुत ही श्रेष्ट देह है जिसे चराचर जीव चाहते हैं एक बार मिलने पर जो सुख मिलना दुर्लभ है मनुष्य को व्यर्थ ही नहीं गवानी चाहिए। वरन् इससे भगवान का भजन ही करना इसका सर्वोत्तम उपयोग है। इस नर तन को पाकर भी जो भगवान का भजन नहीं करता और विषय भोगों के भोग में ही

इसे लगाते हैं उससे अधिक मूर्ख और अभागा कोई नहीं क्योंकि –

नर तन पाई विषय मन देहीं।

पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥

इसी प्रकार "उद्धव जो विचार देखौ औरस न बारबार" अर्थात् मुक्ति का अवसर बार-बार नहीं मिलता हमें मनुष्य देही पाकर ईश्वर के चिन्तन, मनन, भजन ध्यान के अतिरिक्त कुछ नहीं करना चाहिए क्योंकि यह संसार स्वप्न के समान झूठा (मिथ्या) असार एवं क्षण भंगुर है इसके विषयों में अपने मन बुद्धि को नहीं लगाना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट आदेश दिया है कि–

मय्येव मनः आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

निवसिष्यसि मय्येव, अतः ऊर्ध्वं न संसयः। (गी. 12/18)

हे अर्जुन तू मेरे में ही मन को लगा, मेरे में ही बुद्धि को लगा। इसके उपरांत तू मेरे में ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं। अतः हमें अपने कल्याणार्थ मिले मन बुद्धि को भगवान में लगाना चाहिए, क्योंकि यह अनित्य है, अभी है कुछ समय पश्चात् यह नहीं रहेगा। यह शरीर इस संसार से ही प्राप्त होता है, इसका कारण यह सकार हो जब अनित्य और सुख रहित है तो इसका कार्य यह देह नित्य और सुखदायक कैसे हो सकता है। अतः इसको पाकर इसका सर्वोत्तम उपयोग भगवान का भजन ही है। भगवान श्रीकृष्ण जी गीता में अर्जुन के माध्यम से हम सब मनुष्यों को यह उपदेश करते हैं कि

अनित्यमऽसुखं लोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम्॥

तू सुख रहित और अनित्य (क्षण भंगुर) लोकम मनुष्य शरीर को) प्राप्त करके निरंतर नेरा ही भजन कर अर्थात् मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है, परन्तु है नाशवान और सुखरहित इसलिए काल का भरोसा न करके तथा अज्ञान से सुखरूप भासने वाले विषय भोगों में न फंसकर निरंतर मेरा ही भजन कर॥

मन्मना भव मद्मेक्तोमद्धाजी मां नमस्कुरु।

नामेवेष्यसि युक्तवैवमात्मानं मत्पशयणाः॥ (गी. 9/34)

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

अध्याय-15

॥ ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः ॥

बाबा मनोहरदास जीवन-दर्शन

वीतराग शिरोमणी संत

बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज वीतराग शिरोमणी महात्माओं में से एक थे। वे ऐसे उच्चकोटि के महापुरुष थे जिन्होंने गीतोक्त दैवी सम्प्रदा के गुणों का आत्मसात करके परमानंद की प्राप्ति की थी। ऐसे महापुरुषों के चिन्तनमात्र से ही चित्त शुद्ध होकर परमात्मा में लीन होने लगता है तथा मानव मन को अपार शान्ति प्राप्त होती है। महर्षि पातंजलि ने अपने योग्यदर्शन में चित्त निरोध का साधन बतलाते हुए एक स्थान पर कहा है–

वीतराग विषयं चित्तम्'' (योगदर्शन 1-37)

इसका भावार्थ है कि जो महापुरुष वीतराग विषयासक्ति रहित है, उनका चिन्तन करने से चित्त का निरोध हो जाता है। जिन महानुभावों ने गुरुदेव का संग किया, उनसे वार्तालाप किया, तथा उनका सेवा का लाभ लिया उन सबका यही कहना है कि उनके सानिध्य में हमें अपार शान्ति का अनुभव होता था। वे वैराग्य के मानो अवतार ही हैं, उनके जीवन में ''राग'' नाम की कोई वस्तु न थी। राग रजोगुण से उत्पन्न होता है, लेकिन गुरुदेव त्रिगुणातीत थे। उन्होंने इस गुणमयी संसार की प्रत्येक वस्तु से अपने मन को हटा लिया था। वे जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति आदि तीनों अवस्थाओं एवं तीनों गुणों से अलग तुर्यावस्था में स्थित योगी थे। इन तीनों अवस्थाओं एवं तीनों गुणों में जो आकर्षण है जो मिथ्या आनंद का आभास है। उसका उन्होंने त्याग किया था। वे सच्चे अर्थों में परम वैराग्यवान् महा पुरुष थे। रामचरितमानस में अपने अनुज श्री लक्ष्मणजी को परमैवराग्यवान पुरुष का लक्षण बतलाते हुए श्री रामजी का कथन है–

कहिअ तात सो परम् विरागी।

तृन समसिद्धि तीन गुन त्यागी॥

जो तिनके के समान सब सिद्धियों को तथा तीनो गुणों का त्याग करके वही परम वैराग्यवान है। गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी के जीवन में ''राग-सर्वथा समाप्त हो गया था। वे परम ज्ञानी महान भगवद्भक्त थे। जिस पुरुष ने अपने जीवन में राग को तिलांजलि देकर अपने जीवन को वीतराग बना लिया हो वही सच्चा ज्ञानी है क्योंकि हमारे जीवन में राग अज्ञान की उपस्थिति का परिचायक है। अगर हमने महात्मा का वेश धारण कर जीवन से राग को दूर नहीं किया तो ये एक बहुत

हास्यास्पद स्थिति होती है। अक्सर देखा जाता है कि कुछ लोग बाह्याडंम्बर करके साधु का वेश तो धारण कर लेते हैं लेकिन उनके जीवन में अहंता, ममता और आसक्ति पूर्ववत डेरा जमाएँ रहती है, वैराग्य कोसों दूर भी नजर नहीं आता उनका मन विषय भोगों में पूर्ववत रचापचा रहता है, वे समाज में उपहास के पात्र होते हैं। वास्तव में सन्यास शब्द का अर्थ है "त्याग" बिना त्याग (वैराग्य) के कोई भी सन्यासी नहीं हो सकता केवल वेश धारण मात्र से कोई साधु सन्यासी नहीं हो जाता उसे जिस तत्व की परम आवश्यकता है वह है वैराग्य वृत्ति" और यह मुख्य तत्व हमारे गुरुदेव में पूर्णरूपेण देखने को मिलता था। जब कोई साधु सन्यासियों की (भगवावेश धारियों की) जमात हुजूर के यहाँ से गुजरती थी तो आप अपनी अटपटी भाषा में कहा करते थे, "कि डूडू! देख्र तोय, रँगे स्यार दिखाउँ"। वे ऐसे लोगों को रँगे स्यार की उपाधि दिया करते थे जो समाज को ठगने के लिये विविध प्रकार का स्वरुप धारण करते हैं तथा एक प्रकार के पाखण्ड का सहारा लेकर धर्मकर्म की आड में संसार को धोखा देकर धन को ठगते हैं समाज के लोगों की धार्मिक भावनाओं को अपने हित में भड़काकर तथा उनकी श्रद्धा भक्ति का अनुचित लाभ उठाकर उनको ठगते रहते हैं। संसार को ज्ञान वैराग्य के उपदेश देकर खुद विविध प्रकार के भोगों को भोगते हैं। लाखों रुपये अपने पास संग्रह कर लेते हैं। गुरुदेव इस प्रकार के लोगों साधुनामधारी समाज के लिए कलंक और समाज का दुश्मन समझते थे। गुरुदेव का कहना और मानना था कि वैराग्य बिना ज्ञान कैसा? तथा ज्ञान और वैराग्य के बिना कैसी भक्ति। चाहे भक्त हों चाहे ज्ञानी वैराग्य के बिना सब व्यर्थ है-

सवनप भए जोग उपहासी।

जैसे विनु विराग सन्यासी॥ मानस बा. ॥

जिस साधक के हृदय में राग द्वेष हैं तथा वैराग्य एवं समता का अभाव है वह सोचनीय स्थिति में है उसे कभी भी अपेक्षित सिद्धि नहीं मिल सकती है। क्योंकि ये ही साधना के महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारे गुरुदेव तो मानो साक्षात् वैराग्य की प्रतिमूर्ति थे। उनके मन, वचन और समस्त क्रियाओं में वैराग्य को स्पष्ट झलक देखने को मिलती थी। प्रत्येक जीव अपनी इन्द्रियों की तृप्ति दायक भोग पदार्थों की तलाश में रात-दिन अपने अमूल्य जीवन को बर्बाद किये जा रहा है। लेकिन बिना प्रारम्भ विधान के उनकी प्राप्ति प्रत्येक को सम्भव नहीं हो पा रही है। हमारी कामनाएं पूरी नहीं हो पा रही है, दूसरे शब्दों में जो हम चाह रहे हैं जो हमारी अभिलाषा है, वह पूरी नहीं हो पा रही है यही हमारी अशान्ति का मूल कारण है। लेकिन जिन्हें कुछ नहीं चाहिए जिन्होंने अपनी सारी कामनाओं को समाप्त कर दिया है, जो सर्वथा ममता से रहित है तथा अहंकार शून्य है, वे परमशान्ति के अधिकारी हैं। हमारे गुरुदेव शाश्वत शान्ति को प्राप्त महात्मा थे, वे हनेशा भगवन्नाम् के जप में मग्न तथा सांसारिक प्रपंच से दूर अखण्ड आनंद महासागर में निमग्न

रहा करते थे। तप, उनके जीवन का एक अभिन्न अंग था। 'तप' भोगों से अपने मन को विमुख रखना तथा प्रारब्ध के भोगं को भोगकर समाप्त कर पुनः मरणदायी कर्मों से दूर रहना उनकी जीवनचर्या का एक अंग वन गया था।

''गुरु गुरु जप रे, यही तेरा तप रे।''

जिन लोगों को तप, त्याग से लगाव नहीं, केवल संसार वंचना हेतु साधु सन्यासी का रूप धारण कर विषय भोगों में रुचि अधिक है वे वास्तव में सोचनीय है–

वैखानस सोई सोचै जोगू।

तपुविहाई जेहि भावे भोगू॥ मानस अयो. ॥

हमारे गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज ने अपना सम्पूर्ण जीव तप त्याग एवं भगवद्भजन में ही व्यतीत किया था, उनके मन एवं बुद्धि से लोगों के संस्कार सर्वथा समाप्त हो गये थे। उन्हें इस संसार के नश्वर भोगों की कतई चाह नहीं थी, उन्होंने अपने अन्तःकरण को वश में कर लिया था तथा उसे परमात्मा में लीन कर दिया था। आपने, अपने मन को किसी भी कामना को जीवित नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि मन को वाहरी दौड़ को समाप्त कर उसे अन्तर्मुखी बना लिया था, वे सच्चे अर्थों में शहंशाह थे–

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ वेपरवाह।

जिनकों कछू नहिं चाहिये वे शाहन्के शाह॥

उनके मतानुसार जब तक किसी व्यक्ति के मन में कामनाओं की अविरल लहरें उठ रही है तब तक उस मनुष्य को सुख कहाँ जीवन में जब सन्तोष आ जाए तब कहीं समझो कि अब जीवन में सुख शान्ति का आगमन होने वाला है। जब तक मानव मन में विविध प्रकार की कामनाएं डेरा जमाएं रहती हैं, तब तक वह चंचल और दुःखी रहता है। एक कामना पूरी होने के पश्चात् जीव सुखी नहीं होगा, क्योंकि उसके स्थान पर अब दूसरी कामना आ धमकती है। इस प्रकार जीवन पर्यन्त विविध प्रकार की कामनाएं आती जाती रहती हैं और यह अविनाशी जीव कभी सम्पूर्णता से सुखी एवं शान्त नहीं हो पाता। हमारे गुरुदेव ने सन्तोष को खड़ग से समरत कामनाओं को समाप्त कर दिया था वे सच्चे अर्थों में योगी थे उन्होंने अपने मन एवं इन्द्रियों सहित सम्पूर्ण शरीर को अपने वश में किया हुआ था तथा अपने मन बुद्धि का विश्वासपूर्वक ईश्वर में लगा दिया था–

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।

मय्यार्पित मनो बुद्धियों भद्भक्तः समेप्रियः॥ (गी. 12/14)

योगी पुरुष हमेशा सब परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहा करते हैं तथा मन-बुद्धि तथा इन्द्रियों सहित सम्पूर्ण शरीर उनके नियंत्रण में रहता है। किसी भी प्रकार का दुर्गुण दुराचार उसके मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों में प्रवेश नहीं कर सकता है। उसकी बुद्धि में एक परमात्मा की अटल सत्ता रहती हैं, उसकी बुद्धि विपर्यय और संशय दोष से सर्वथा रहित होती है। उसका केवल परमात्मा में ही दृढ़ विश्वास होता है, ऐसा होते ही उसके मन और बुद्धि स्वयमेव भगवान में लग जाते हैं। ऐसा सिद्ध भक्त भगवान को अपनी आत्मा के सदृश्य प्यारा होता है, क्योंकि वह भक्त भगवान को अपनी ही आत्मा में तदाकार समझते हुए उसका भजन करता है। जब भक्त भगवान को सर्व समर्पण भाव से अपनी आत्मा मान लेता है और उसकी शरणागति ग्रहण कर लेता है तो ऐसे भक्त के लिए भगवान भी अपना हृदय स्थल खोल देते हैं, उसे अपनी आत्मा में लीन कर लेते हैं, गीता में उन्होंने अपना सिद्धान्त वर्णन करते हुये कहा है–

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ (गी. 4/11)

"अर्थात् जो मुझे जैसे भजता है, मैं भी उसे ठीक वैसे ही भजता हूँ। रामचरित मानस में भगवान ठीक इसी प्रकार के भाव प्रकट करते हैं–

दोहा *पुरुष नपुसंक नारि वा, जीव चराचर कोई।*
सर्व भाव भजकपट तजि, मोहि परम प्रिय सोई॥

(मानस उ. 87)

इस प्रकार भगवान भक्तों के हृदयानुसार उन्हें अभेद भाव से प्रेम करते हैं। लेकिन जिस मनुष्य को सांसारिक कामनाएँ शान्त नहीं हुईं, उसके हृदय में सन्तोषादिक गुणों का शुद्ध अभाव रहता है और उसे भगवान को प्राप्त न होकर इस नश्वर संसार के दुःखों को प्राप्त होती है। उसका मन कामनाओं की पूर्ति न होने के कारण सदैव दुःखी रहता है। प्रत्येक सांसारिक जीव के दुःखों का मूल कारण उसकी अनन्त इच्छाएँ हैं। जो कभी भी पूर्ण नहीं होंगी, क्योंकि किसी की भी सम्पूर्ण कामनाएँ आज तक न तो पूरी हुई हैं न भविष्य में होंगी, क्योंकि उनका समुद्र तरंगवत अंत नहीं। हमारे गुरुदेव वीतराग शिरोमणि महान् पुरुष थे उन्होंने संतोषरूपी धन का संग्रह किया था, जो संसार के समस्त धनों से श्रेष्ठ है–

दोहा *गोधन गज धन बाजि धन और रतन धन खान।*
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥

इस प्रकार सन्तोष के आते ही समस्त कामनाओं का अन्त हो जाता है और जीव पूर्ण सुखी हो जाता है–

सो. *बिन सन्तोष न काम नसाहीं।*
काम अछत सुख सपने हूँ नाहीं॥

अतः जो अपनी कामनाओं को सन्तोष के खड़ग से काट फैंकता है, वही जीव वास्तविक शान्ति को प्राप्त होता है–

विहाय कामान्य सर्वान्पुमांश्चरति निःसपृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिर्माधगच्छति॥ (गी. 2/71)

अर्थात् जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर, ममता रहित और अहंकार रहित, सपृहा रहित हुआ बर्तता है; वह शान्ति को प्राप्त होता है।

इस प्रकार हमारे गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज ने अपने हृदय से सम्पूर्ण इच्छाओं को समाप्त कर स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो गये थे तथा हम संसारी जीवों को साधना का आलोकमय पथ प्रदर्शन किया था।

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

❑❑❑

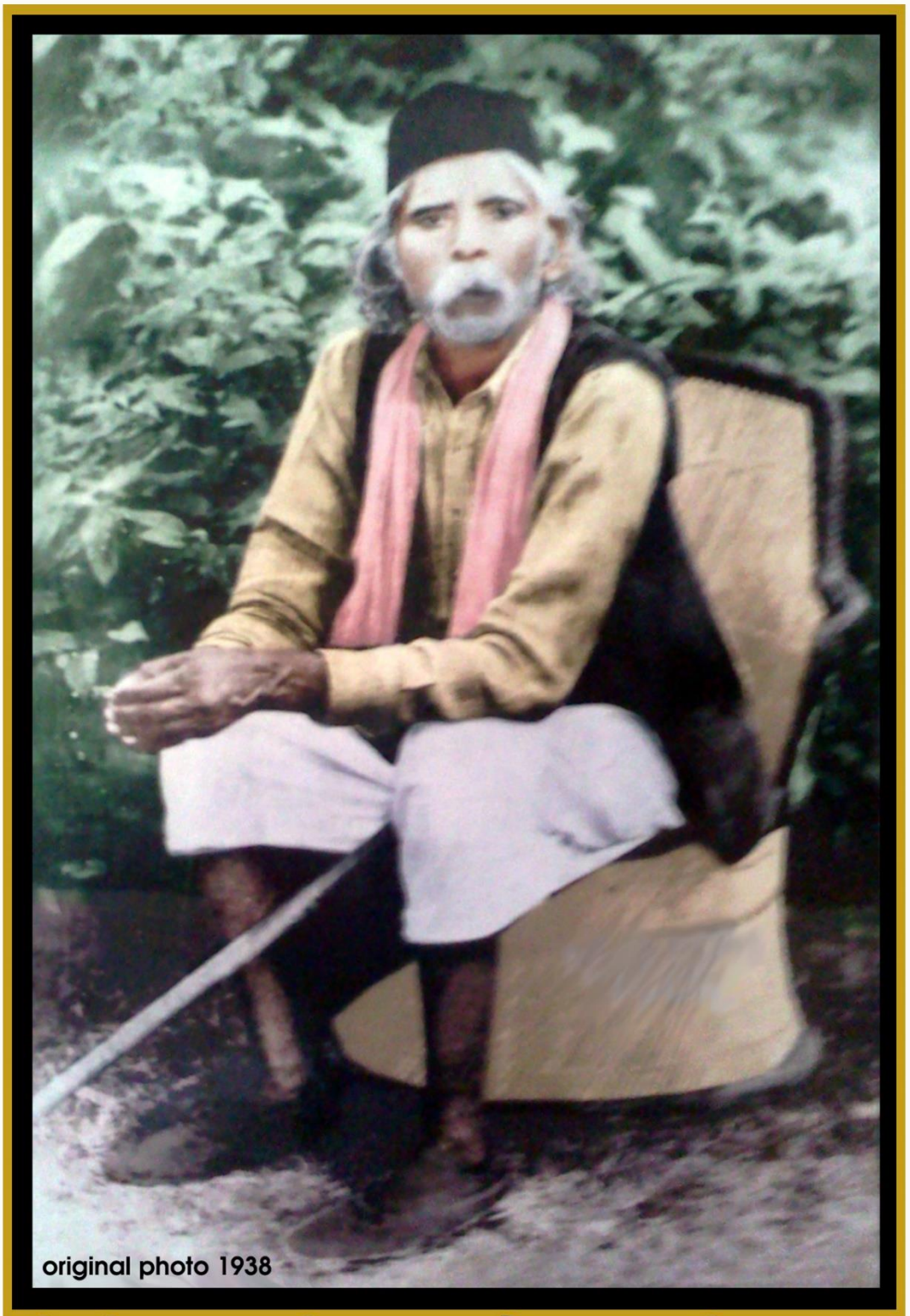

श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज